International Journal of Sanskrit Research 2020; 6(3): 42-45

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2020; 6(3): 42-45
© 2020 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 18-03-2020
Accepted: 29-04-2020

दीपक कालिया
ज़ाकिर हुसैन दिल्ली कॉलेज (प्रातः) दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

Corresponding Author:
दीपक कालिया
ज़ाकिर हुसैन दिल्ली कॉलेज (प्रातः) दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

गीतानुसारिणीशिक्षणपद्धति

दीपक कालिया

सारांश
शतसाहस्रीसंहितामहाभारत के भीष्मपर्व में संकलित श्रीकृष्ण द्वारा कुरुक्षेत्र की रणभूमि में अर्जुन को दिए गए उपदेश "श्रीमद्भगवतगीता" नाम से प्रसिद्ध हैं। अठारह अध्यायों एवं सात सौ श्लोकों में निबद्ध यह उपदेश शिक्षण के स्वरूप एवं पद्धति का परिचायक है।प्रस्तुत शोधपत्र में शिक्षक श्रीकृष्ण द्वारा शिष्य अर्जुन को जिस पद्धति से शिक्षित किया गया उसी का विवेचन करते हुए गीता के आधार पर शिक्षण का स्वरूप, शिक्षक व शिष्य के कर्त्तव्य, शिक्षक व शिष्य के सम्बन्ध एवं वर्तमान शिक्षण पद्धति से गीतानुसारिणी शिक्षण पद्धति की तुलना की गई है। शिक्षण के स्वरूप का विवेचन पांच मुख्य क्रियाओं के आधार पर किया गया है वे है—शारीरिकी, प्राणिकी, मानसिकी, आन्तरात्मिकी और आध्यात्मिकी। तदनन्तर गीता के उद्धरणों द्वारा यह प्रतिपादित करने का प्रयास किया है कि सफल शिक्षण वही है जिसमें शिक्षक शिष्य के प्रति स्नेहभाव युक्त हो व शिष्य शिक्षक के प्रति निष्ठावान श्रद्धावान व समर्पित हो, दोनों में परस्पर सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध हो। गीता की शिक्षण पद्धति का सार है "शिक्षकः तु मार्गदर्शकः न तु निर्देशकः"। शिक्षण की परिणति तभी है जब अर्जुन की भांति शिष्य शिक्षक से कहे—"नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।स्थितोऽस्मि गतसंदेहः करष्ये वचनं तव"।

मूल शब्दः गीतानुसारिणी शिक्षणपद्धति वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सम्पूर्ण जगत के लिए सर्वथा ग्राह्य एवं उपादेय है अतएव कहा है— कृष्णं वन्दे जगद्गुरूं।

प्रस्तावना
कुरूक्षेत्र की रणभूमि में भगवान श्रीकृष्ण के द्वारा किंकर्त्तव्यविमूढ़ शरणागत अर्जुन को जो उपदेश दिए गए वे उपदेश शतसाहस्रीसंहिता महाभारत के भीष्मपर्व में "श्रीमद्भगवद्गीता" के रूप में सात सौ श्लोकों में निबद्ध हैं। इस उपदेशात्मक श्रीमद्भगवद्गीता में जो शिक्षणपद्धति का स्वरूप है वह विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण एवं ग्राह्य है क्योंकि वर्तमान शिक्षणपद्धति से गीतानुसारिणी शिक्षणपद्धति अपेक्षाकृत अधिक व्यावहारिक है।युद्ध भूमि में जब अर्जुन शत्रुपक्ष में स्वजनों को देखता है तो वह श्रीकृष्ण से कहता है—

दृष्टवेनं स्वजनंकृष्ण युयुत्सुंसमुपरिस्थतम्।
सीदन्ति मम गात्राणि मुखंचपरिशुष्यति।।(1/28)

ऐसी परिस्थिति में शोकमोहग्रस्त अर्जुन के मन में द्वन्द्व उत्पन्न होता है और वह किंकर्त्तव्य विमूढ़ होकर कहता है "नयोत्स्ये" और श्रीकृष्ण की शरण में जाकर अपनी मनोव्यथा का वर्णन कर निवेदन करता है—

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामित्वांधर्मसम्मूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितंब्रूहितन्मे शिष्यस्तेऽहंशाधि मांत्वांप्रपन्नम्।। (2/7)

अर्जुन के युद्ध न करने के निश्चय को और उसकी प्रार्थना को सुनकर श्रीकृष्ण उसे इस प्रकार उपदेश देते हैं—

तमुवाचह्रषीकेशः प्रहसन्निवभारत।
सेनयोरुमयोमध्ये विषीदन्तमिदंवचः।। (2/10)

इसी पृष्ठभूमि से गीता में शिक्षण का सूत्रपात हुआ।

शिक्षणस्वरूप

"शिक्षण"इस पद में शिक्ष् धातु एवं ल्युट् प्रत्यय है। इसका अभिप्राय है– ज्ञानार्जन और अध्यापन। शिक्षक और शिष्य इन दो से ही शिक्षण होता है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण शिक्षक और अर्जुन शिष्य है। अर्जुन का यह कथन–"शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वांप्रपन्नम्" यह संकेत करता है कि अर्जुन के मन में ज्ञानार्जन की उत्कटाभिलाषा है। उत्तम शिक्षण तभी संभव है जब शिष्य मन से शिक्षा के लिए इच्छुक हो अन्यथा शिक्षण निरर्थक है। शिक्षण का मुख्य उद्देश्य सर्वांगीणविकास है। उचित शिक्षण से ही मानव लौकिक और आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त कर सकता है। गीता में शिक्षण का मुख्य उद्देश्य शिष्य अर्जुन के मन में विद्यमान संशय एवं अज्ञान का निराकरण करके उसे कर्त्तव्यबोध करवाना है। श्री अरविन्दमहोदयानुसार शिक्षण के मुख्य पांच बिन्दु है जिनका सम्बन्ध मानव की पांच प्रधान क्रियाओं से होता है वे हैं– शारीरिकी, प्राणिकी, मानसिकी, आन्तरात्मिकी और आध्यात्मिकी। गीता में इन्हीं क्रियाओं के अनुसार ही शिक्षण है यथा– शारीरिकी शिक्षा के सम्बन्ध में श्रीकृष्ण कहते हैं–

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति नचैकान्तमनश्नतः।
नचातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतोनैव चार्जुन।।(6/16)
एवं
युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।।(6/17)

अर्थात् हे अर्जुन! अतिशय खाने वाले या बिलकुल न खाने वाले और खूब सोने वाले अथवा जागरण करने वाले को योग सिद्ध नहीं होता जिसका आहार विहार नियमित है, कर्मों का आचरण संयमित है और सोना जागना परिमित अर्थात् नपा तुला है। उसके लिए योग दुःखों का नाश करने वाला अर्थात् सुखदायक होता है।शारीरिकी क्रिया को ही स्पष्ट करते योगाभ्यास के विषय में श्रीकृष्ण कहते हैं कि–

शुचौदेशेप्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्।। (6/11)
तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।
उपविश्यासनेयुज्याद्योगमात्मविशुद्धये।।(6/12)

अर्थात् योगाभ्यासी पुरुष शुद्ध स्थान पर अपना स्थिर आसन लगाए जोकि न बहुत ऊंचा हो और न नीचा। उस पर पहले दर्भ, फिर मृगछाला और फिर वस्त्र बिछाए वहां चित्त और इन्द्रियों के व्यापार को रोककर तथा मन को एकाग्र करके आत्मशुद्धि के लिए आसन पर बैठकर योग का अभ्यास करे।इस प्रकार शारीरिकी शिक्षा के उपरान्त श्रीकृष्ण प्राणिकी शिक्षा के सन्दर्भ में अर्जुन से कहते हैं कि–

यततोह्यपि कौन्तेय पुरूषस्यविपश्चितः। इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्तिप्रसभं मनः।।(2/60)
तानिसर्वाणि संयम्ययुक्तआसीत् मत्परः।
वशे हियस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।(2/61)

अर्थात् हे कुन्तीपुत्र! केवल इन्द्रियों को वश में करने के लिए प्रयत्नशील विद्वान् के भी मन को, ये प्रबल इन्द्रियां बलपूर्वक मन को अपनी ओर खींच लेती हैं इसलिए इन सब इन्द्रियों का संयमन कर योगयुक्त और मत्परायण रहना चाहिए। इस प्रकार जिसकी इन्द्रियां अपने वश मेंहो जाएं उसकी बुद्धि स्थिर हो जाती है।
इस प्रकार उचित आहार विहार द्वारा इन्द्रिय संयम करके ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के लिए ईश्वर में चित्त लगाना चाहिए।
तदनन्तरगीता में मानसिकी आध्यात्मिकी एवं आन्तरात्मिकी क्रियाओं सम्बन्धी शिक्षण श्रीकृष्ण द्वारा किया गया है।गीता में शिक्षण का उद्देश्य पूर्णतया सफल दिखाई देता है क्योंकि उत्कृष्ट शिक्षण वही होता है जो शिष्य के मन में विद्यमान संशयों का निराकरण करके उसकी ज्ञानपिपासा को शान्त करे। अर्जुन का यह कथन गीता के शिक्षण की सफलता का द्योतक है–

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युतः।
स्थितोऽस्मि गतसंदेहः करष्ये वचनं तव।(18/73)

गीता के पर्यालोचन से शिक्षक– शिष्य के कर्त्तव्य एवं उनके सम्बन्ध के विषय में सम्यक ज्ञान प्राप्त होता है यथा–

शिक्षककर्त्तव्य

अर्जुन के युद्ध न करने के निश्चय को सुनकर भी (न योत्स्ये) श्रीकृष्ण क्रोधित नहीं होते अपितु मुस्कुराते हुए (प्रहसन् इव) उसे उपदेश देते हैं इससे यह संकेत मिलता है कि शिक्षक को शिष्य के प्रति सर्वदा शान्तचित होकर ही व्यवहार करना चाहिए। शिष्य के प्रतिकूल विचारों को भी धैर्यपूर्वक सुनकर ही निर्णय लेना चाहिए यही शिक्षक का गुण उसकी महानता का परिचायक है। आज का शिक्षक धैर्य एवं शान्ति से विमुख होकर अविवेक द्वारा शिष्य से वैर भाव रखने में अपना गौरव समझता है अतः वर्तमान समय में शिक्षक व शिष्य में सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध का अभाव विद्यमान है।गीता के माध्यम से ही शिक्षक का यह कर्त्तव्य भी ज्ञात होता है कि वह बलपूर्वक शिष्य को शिक्षित न करे। न ही उसके प्रति किसी दण्ड का विधान करे क्योंकि अनिच्छा से प्राप्त ज्ञान भारभूत होता है अतएव उपदेश के अनन्तर श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते है कि–

इतितेज्ञानमाख्यातं गुहयाद्गुह्यतरं मया।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु।।(18/63)

अर्थात् इस प्रकार मैंने यह गुह्या से भी गुह्य ज्ञान तुझसे कहा है। इसका पूर्ण विचार करके जैसी तेरी इच्छा हो वैसा करो। सद्शिक्षण का भी यही सिद्धान्त है कि–
"शिक्षकः मार्गदर्शकः नतु निर्देशकः।"

गीता में श्रीकृष्ण मार्गदर्शक है न कि निर्देशक। इसीलिए उन्होंने अर्जुन को मार्ग दिखाकर कहा कि अब जैसा तुम चाहते हो वैसा ही करो तुम मेरी ओर से कुछ भी करने के लिए बाध्य नहीं हो। श्रीकृष्ण का यह कथन शिष्य को आत्मचिन्तन के लिए प्रेरणास्वरूप है। शिष्य को शिक्षक अपने शिक्षण से इतना योग्य बना दे कि शिष्य अपने विवेक द्वारा यह निर्णय करने में समर्थ हो जाए कि उसके लिए क्या करणीय है एवं क्या अकरणीय। यही शिक्षण की सफलता है शिष्य के मानसिक विकास में उसका सामर्थ्य एवं रुचि अत्यावश्यक है। जैसा कि श्रीकृष्ण ने भी अर्जुन की रुचि एवं कार्यक्षमता आदि सभी की परख करके ही उसे उपदेश दिया।

शिक्षक का एक कर्त्तव्य यह भी है कि वह कृत्रिमता को त्याग कर स्वभाविक रूप से ही शिक्षण करे। क्योंकि कृत्रिम रूप से अर्थात् बनावटीपन से किया गया शिक्षण व्यर्थ है। गीता में शिक्षण का स्वरूप अत्यन्त व्यावहारिक है कृत्रिमता का तो अभाव ही है। यथा श्रीकृष्ण अर्जुन को सखा और मित्र कहकर सम्बोधित करते हैं और अर्जुन के मनोनुकूल ही उपदेश देते हैं। शिक्षण में शिक्षक के आचरण की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। संसार में अपने–अपने क्षेत्र में जो महापुरुष हुए है उन आचार्यों, गुरुओं और शासकों पर शिक्षाप्रदान का उत्तरदायित्व विशेष रूप से होता है क्योंकि गीता में कहा है–

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरोजनः।
स यत् प्रमाणंकुरुते लोकस्तदनुवर्तते।।(3/21)

इससे यह ज्ञात होता है कि मानव के आचरण का प्रभाव अन्य लोगों पर पांच गुणा अधिक होता है वाणी का प्रभाव तो केवल दुगुना होता है। जो मनुष्य स्वयं कर्त्तव्य पालन न करके केवल दूसरोंको ही कर्त्तव्य पालन की शिक्षा देते हैं उनकी शिक्षा से लोग प्रभावित नहीं होते। उसी शिक्षक की शिक्षा प्रभावपूर्ण और ग्राह्य होती है जो स्वयं भी निष्काम भाव से शास्त्रानुसार लोक मर्यादा का पालन करता है। अतएव जगदगुरू श्रीकृष्ण अपने विषय में कहते हैं कि यद्यपि मेरे लिए तीनों लोकों में कुछ भी करने योग्य और ग्रहण करने योग्य नहीं हैं तथापि मैं जहां जिस रूप में अवतार लेता हूं वहां उसके अनुरूप ही अपने कर्त्तव्य का पालन करता हूं। यदि मैं भी अपने कर्त्तव्य का पालन न करूं तो मेरे शिष्य भी अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करेंगे–

नमेपार्थास्ति कर्त्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचिन।
नानवाप्तमवाप्तव्यंवर्त एव चकर्मणि।।(3/22)
यदिह्यहंन वर्तेयंजातु कर्मण्यतन्द्रितः।
ममवर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः।।(3/23)

इस प्रकार गीता की शिक्षण पद्धति में शिक्षक का सदाचारी एवं व्यावहारिक होना आवश्यक है। सर्वोत्तम शिक्षक वही है जो शिष्य का सर्वांगीण विकास करता हो न कि मात्र पुस्तकीय ज्ञान देता हो। गीता के उपदेश से शिष्य का शारीरिक–नैतिक आध्यात्मिक विकास होता है। श्रीकृष्ण सर्वप्रथम अर्जुन के मन में स्थित कल्मष को दूर करते हैं। अर्जुन के शोक एवं युद्ध न करने के कारण को जानकर उसके अनुसार ही श्रीकृष्ण उपदेश देते हैं। श्रीकृष्ण के शिक्षण से यह ज्ञात होता है शिक्षक शिष्य के प्रति धैर्यवान एवं अनुरागयुक्त रहे जैसे श्रीकृष्ण अर्जुन के प्रति थे। कविकुलगुरू कालिदास के द्वारा कहा भी गया है कि– "प्रभवत्याचार्यः शिष्यजनस्य" (मालविका.) शिक्षक के गुणों का वर्णन करते हुए कालिदास कहते हैं–

श्लिष्टाक्रियाकस्यचिदात्मसंस्था संक्रान्तिस्यस्य विशेषयुक्ता।
यस्योभयंसाधु स शिक्षकाणांधुरि प्रतिष्ठापयितव्य एव।।(मालविकाग्निमित्रम् 1/16)

गीता की शिक्षण पद्धति के द्वारा यह सिद्ध हो जाता है कि गुरू के बिना ज्ञान प्राप्ति असंभव है केवल शैक्षिक ज्ञान विद्वत्ता और उच्च उपाधियों द्वारा जीवन के कष्टों का निवारण नहीं किया जा सकता। गुरू ही जीवन के कष्टों का निवारण करने में समर्थ है। वैदिक साहित्य में कहा है–

षट्कर्मनिपुणो विप्रो मन्त्रतन्त्रविशारदः।
अवैष्णवो गुरूर्न स्याद् वैष्णवःश्वपचो गुरूः।।

इसलिए यदि आर्थिक सम्पन्नता और भौतिक सुख ही मानव के त्रिविध दुःखों का विनाश करने में समर्थ होते तो अर्जुन ऐसा कभी नहीं कहता–

नहिप्रपश्यामि ममापनुद्याद्–यच्छोकमुच्चोषणमिन्द्रियाणाम्।
अवाप्य भूभावसपत्नमृद्धंराज्यंसुराणामपि चाधिपत्यम्।।(2/8)

अर्थात् भले ही मुझे सारी पृथिवी में निष्कंटक धन–धान्य सम्पन्न राज्य मिल जाय, भले ही मुझे स्वर्गलोक के देवताओं पर शासन करना मिल जाय परन्तु मुझे कोई ऐसी वस्तु नहीं दिखाई देती जो इन्द्रियों को सुखा डालने वाले इस शोक को दूर कर सके।
इस प्रकार गुरू अर्थात् शिक्षक की शिक्षण में महत्त्वपूर्ण भूमिका है।शिक्षक केवल ज्ञान का संप्रेषण ही न करे अपितु शिष्य से भी ज्ञात करे कि उसे प्रदत्त ज्ञान समझ में आया है कि नहीं। शिक्षक एवं शिष्य दोनों की ज्ञान के आदान प्रदान में समान रूप से प्रतिभागिता रहे इसलिए श्रीकृष्ण अर्जुन को पूछते हैं– हे पार्थ! क्या तुमने एकाग्रचित्त होकर यह सब कुछ सुना? हे धनंजय! अज्ञान के कारण जो तुझे 'मोह' उत्पन्न हो गया था, जो आशक्ति उत्पन्न हो गई थी क्या वह दूर हुई?

कच्चिदेतत्श्रुतंपार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा।
कच्चिदज्ञानसम्मोहः प्रणष्टस्तेधनंजयः।।(18/72)

इसी प्रकार शिक्षक का यह भी कर्त्तव्य है कि वह शिष्य का सम्यक् परीक्षण करके मानसिक एवं शारीरिक दृष्टि से उसका सर्वांगीण विकास करे। जगद्गुरू श्रीकृष्ण अर्जुन की मनोदशा को जानकर सर्वप्रथम उसके मोह का निराकरण करते है तत्पश्चात आत्मा के स्वरूप को विस्तार से बताते हैं जब श्रीकृष्ण को यह निश्चय हो जाता है कि अर्जुन की बुद्धि स्थिर हो गई है तब वे उसे कर्मयोग, भक्तियोग एवं ज्ञानयोग का उपदेश देते हैं परन्तु श्रीकृष्ण अर्जुन को उपदेश पालन के लिए बाध्य नहीं करते। श्रीकृष्ण का अर्जुन के प्रति यह व्यवहार एक उत्तम शिक्षक के गुण का द्योतक है।

शिष्यकर्त्तव्य

गीता में शिष्य अर्जुन के आचरण से यह ज्ञात होता है कि शिष्य का सर्वप्रथम कर्त्तव्य है शिक्षक के प्रति पूर्ण समर्पण जैसे कि अर्जुन श्रीकृष्ण की शरण में जाकर पूर्णतया समर्पित होकर ज्ञान की याचना करता है– शिष्यस्तेऽहं शाधिमां त्वां प्रपन्न्म्।(2/7)
शिष्य का द्वितीय कर्त्तव्य है किवह शिक्षक के प्रति ईर्ष्याद्वेष रूप दोष रहित होकर ज्ञान
प्राप्त करे तभी गुरू उसे सच्चे मन से ज्ञान प्रदान करता है क्योंकि गीता में श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि मैं तुझे इसलिए गुह्य से भी गुह्य विज्ञान सहित ज्ञान बताता हूं क्योंकि तुम दोषदृष्टि से रहित हो और इस गुह्य ज्ञान को जानने से तुम अशुभ से मुक्त हो जाओगे–

इदंतुते गुह्यतमंप्रवक्ष्याम्यनसूयवे।
ज्ञानंविज्ञानसहितंयज्ज्ञात्वामोक्ष्यसेऽशुभात्।।(9/1)

षिष्य का कर्त्तव्य यह है कि वह गुरुओं के चरणों में झुककर, निष्कपट भाव से, उनसे प्रश्न तथा शंका समाधान करने से, गुरुओं की सेवा से ज्ञान प्राप्त करे। ऐसा करने पर तत्त्वदर्शी तुम्हें गुह्य ज्ञान का उपदेश देंगे।

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेनसेवया।
उपदेक्ष्यन्तितेज्ञानंज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः।।(4/34)

अतएव शिष्य सर्वदा शिक्षक के प्रति निष्ठावान रहे। अर्जुन के मन में श्रीकृष्ण के प्रति अपार निष्ठा व श्रद्धा थी तभी वह ज्ञान प्राप्त करने में समर्थ हुआ। अर्जुन का बारंबार प्रश्न करना इस बात की ओर संकेत करता है कि वह उपदेश को बहुत ही एकाग्र होकर सुन रहा था और श्रीकृष्ण का शिक्षण भी इतना स्पष्ट एवं प्रभावपूर्ण था कि अर्जुन को उसमें रुचि जाग्रत हो रही थी और जहां भी कोई शंका होती वह तत्काल ही प्रश्न पूछकर उसका समाधान करवाता। जैसे कि अर्जुन ने कहा–

एतन्मेसंशयंकृष्ण छेत्तुमर्हस्यशेषतः।
त्वदन्यःसंशयस्यास्य छेत्ता न ह्युपपद्यते।।(6/39)

हे कृष्ण! मेरे संदेह को तुम ही काट सकते हो अर्थात् दूर कर सकते हो तुम्हारे बिना इसे दूर करने वाला कोई नहीं मिल सकता। इस प्रकार गीता की शिक्षण पद्धति में शिष्य के शिक्षक के प्रति कर्त्तव्यबोध होता है।

शिष्य शिक्षक सम्बन्ध

शिक्षण की सफलता का मूलाधार शिक्षक शिष्य का सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध है। जैसा कि इस मन्त्र में भी कहा है–

ऊँ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्वि नावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै। (कठोपनिषद्)

शिक्षक के प्रति शिष्य निष्ठावान श्रद्धावान हो और शिष्य के प्रति शिक्षक वात्सल्य भाव युक्त हो। जैसा कि गीता में श्रीकृष्ण अर्जुन के प्रति स्नेह युक्त है और अर्जुन श्रीकृष्ण के प्रति श्रद्धायुक्त है।निरुक्तकार यास्कमुनि ने शिक्षण का वर्णन करते हुए कहा कि शिक्षण कर्णवेध संस्कार के समान है। कर्णवेध के समय पीड़ा के भय से बालक अपने सिर को स्थिर नहीं रखता इधर–उधर घुमाता है इसीलिए विभिन्न मधुर वचनों से उसके ध्यान को अन्य बातों में लगाकर सुई इस प्रकार कान में प्रविष्ट की जाती है जिससे पीडा का आभास ही न हो और उचित स्थान पर छिद्र हो जाए और जब कर्णाभूषण पहने तो मुख की शोभा बढ़े। इसी प्रकार शिक्षक भी सुवचनों से विद्याप्रदान करे जिससे शिष्य को सुनने में कष्ट न हो शिष्य यह अनुभव करे कि उसे यह अमृत प्रदान किया जा
रहा है ऐसे शिक्षण के द्वारा ही मानव जीवन में अज्ञान का अंधकार दूर होकर ज्ञान का प्रकाश हो सकता है। गीता में श्रीकृष्ण ने कहीं भी अर्जुन से कोई भी ऐसे कठोर वचन नहीं कहे जिससे कि अर्जुन को कष्ट पहुंचे अपितु श्रीकृष्ण ने अर्जुन के अनुचित व्यवहार को भी बड़ी सहजता से उसे अवगत करवा दिया।

शिष्य शिक्षक के मध्य गाम्भीर्य का होना परमावश्यक है तभी शिक्षण की सफलता है। जैसा कि अर्जुन का यह कथन–

स्थितोऽस्मिगतसंदेहः करिष्येवचनंतव।(18/73)

इस ओर संकेत देता है कि श्रीकृष्ण का शिक्षण सफल हुआ है।वर्तमान शिक्षण पद्धति में शिक्षा का स्वरूप मैकालेमहोदय के अनुसार होने के कारण पाश्चात्य संस्कृति का भारत देश में प्रचार प्रसार ही मुख्य ध्येय हो गया। इसीलिए ईश्वर व धर्म में अविश्वास, असंयम, ब्रह्मचर्य का अभाव, माता पिता गुरू के प्रति अश्रद्धा, विलासिता, अपव्यय, भ्रष्टाचार, क्रूरता आदि का प्रसार हो गया है। आजकल शिक्षक शिष्य के सम्बन्धों मूलाधार व्यापार हो गया है। शिक्षा एक व्यापार के रूप में प्रचलित हो गई है इसलिए शिक्षित लोग शान्त और सुखी नहीं है। राग द्वेष ग्रसित शिक्षा राग द्वेष को ही जन्म दे रही है। इस शिक्षा पद्धति के दोष को समूल नष्ट करने के लिए गीतानुसारिणी शिक्षण पद्धति का होना अति अनिवार्य है क्योंकि यह सर्वजनहिताय है। यह न केवल भारत देश के लिए हितकारिणी है अपितु सम्पूर्ण विश्व के लिए उपयोगी सिद्ध होगी इसीलिए श्रीकृष्ण को जगद्गुरू कहा है–

वसुदेवसुतंदेवंकंसचाणूरमर्दनम्।
देवकीपरमानन्दंकृष्णंवन्देजगद्गुरुम्।।

सन्दर्भग्रन्थाः

1. श्रीमद्भगवद्गीता–शांकरभाष्य हिंदी अनुवादसहित। अनुवादक–श्रीहरिकृष्णदासगोयन्दका गीता प्रेस गोरखपुर।सं.. 2046 सोलहवा संस्करण
2. गीतोपनिषद् श्रीमदभगवद्गीता यथारूप, भक्ति वेदान्त बुक ट्रस्ट
3. मालविकाग्निमित्रम्–कालिदास, डा. सी.आर.नागपाल, नीलमपब्लिशर्ज़, जालन्धर
4. Introductionto Nirukt–डा. लक्ष्मणस्वरूपहिन्दीअनुवादमोतीलालबनारसीदासदिल्ली
5. कल्याण–शिक्षाङ्कसन् 1988, 62वांवर्ष
6. संस्कृत–हिन्दीकोश–वामनशिवरामआप्टे, न्यूभारतीयबुककॉर्पोरेशन,दिल्ली,अष्टम्, संस्करण 2004
7. कठोपनिषद्– गीताप्रेस, गोरखपुर